करूंगी ।

मन्थरा—अच्छा तो सुनो ! जिस समय राजा दशरथ इन्द्र की ओर से शम्बरासुर के साथ युद्ध करने गये थे तो रथ का पहिया टूट जाने पर तुमने अपने हाथों का सहारा देकर महाराज की रक्षा की थी और उन्होंने तुम्हें दो वरदान देने की जबान दी थी ।

कैकेयी—हां ! ठीक है; वह सारा सम्वाद मुझे याद है ।

मन्थरा—तो बस, आज अपने उन्हीं वरदानों को मांग लो ! एक में भरत को राज्य और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का बनवास!

कैकेयी—किन्तु राम को बनवास भेजने से लाभ ?

मन्थरा—रानी ! तू बहुत भोली है ! ये राजनीति की बातें हैं, इनमें बड़ी सावधानी से काम करना चाहिये । ऐसा न हो कि राम यहाँ रहें और भरत के राज्य में विघ्न डालें ।

कैकेयी—हां ! यह भी ठीक है ।

मन्थरा—परन्तु इतना ध्यान रखना कि राजा की चिकनी चुपड़ी बातों में न आ जाना, इन वरदानों को छोड़ कर किसी और बात पर न रीझ जाना ।

कैकेयी—नहीं, कदापि नहीं !

जान से जाऊ मगर छोड़ूं नहीं इक बार हट ।
देख लेना किस तरह से होगी पूर्ण नार हट ।।

मन्थरा—बस ! तो फिर तेरी ही जीत है !

कैकेयी—अच्छा अब मैं कोप भवन में जाती हूं ! और तिरया चरित्र का जाल फैलाती हूं ।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(कोप-भवन)

[कैकेयी काले वस्त्रों में पड़ी है, राजा आते हैं]

दशरथ—हैं ! यह कौन ? मैले वस्त्र पहने ! आभूषण बिसराये, बाल बखेरे किस दशा में लौलीन है ? ओह परमात्मा ! यह कोप भवन में लेटने का कौन सा दिन है ? (कैकेयी को देखकर) ओह ! प्यारी तुम हो ? बतलाओ, इस शोकजनक अवस्था का कारण, इस दुखमय दशा की वजह ?

किया है क्यों रंग तनका मैला, बिगाड़ा सारा शृंगार अपना।
उतार डाले हैं सारे भूषण, बदल दिया है व्यवहार अपना ।।
पड़ी हो उलझन में कौनसी तुम, मलीन शोभा है क्यों बदन की।
सुनादे सारी जो जी में आई, छिपा न मुझसे लगी को मनको ।।

[कैकेयी चुप रहती है]

दशरथ—रानी ? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि प्रातःकाल राम को राज-तिलक होने वाला है। घर-घर में बधाई गाई जा रही है, नगरी की शोभा बढ़ाई जा रही है फिर तुम मंगल में अमंगल क्यों मना रही हो ? ऐसे शुभ अवसर पर यह दशा क्यों बना रही हो ?

राम जो प्यारा तुम्हारा है तुम्हारा प्राण है।
कल उसी के राज का होने चला सामान है ।।
आज इस आनन्द दिन पर दुःख पाना किस लिये ?
ऐसे शुभ अवसर पै यह अशगुन मनाना किसलिये ।।

[कैकेयी फिर भी शान्त रहती है]

दशरथ—हैं, प्यारी ! बोलती क्यों नहीं ? क्या तुम नहीं जानती कि मेरे प्राण, मेरा धन और मेरा कुटुम्ब सब तुम्हारे ऊपर बलि-

हार है फिर स्पष्ट बताओ कि तुम्हें क्या स्वीकार है ?:—

क्या किसी ने कह दिये हैं आज कुछ कड़वे वचन ?
या किसी की बात तुमको हो नहीं पाई सहन ?
पड़ गई बाधा कोई आराम के सामान में।
या कोई आई कमी रायी तुम्हारे मान में॥
सच बताओ क्यों पड़ी हो आज मन मैला किये ?
जो कहो करदूं अभी संसार में तेरे लिये॥

कैकेयी—(करवट लेकर)—

मत सुनो मन की व्यथा इसकी चिकित्सा ही नहीं।
कर सको उपचार जिसका रोग ऐसा ही नहीं॥
क्या कहूं कैसे कहूं कहने से क्या परिणाम है।
है सरल सुनना मगर करना कठिन सा काम है॥

दशरथ—क्या कहा ? कठिन काम है ! प्यारी ! क्या तुम्हारा कहा करना मेरे लिये कठिन काम है ?

क्या है संसार में जो तुझ से अधिक प्यारा हो ?
प्राण बलिदान करूं तेरी यदि इच्छा हो॥

कैकेयी—हां, दिखावे की बातों पर तो सभी अकड़ जाते हैं; आकाश और रसातल एक कर दिखाते हैं; परन्तु समय पड़ने कर पीछे हटते ही नजर आते हैं :—

बड़ा अन्तर है राजन् बात कहने और करने में।
यह कह देते हैं मरता हूं,मगर मुश्किल है मरने में॥

दशरथ—अच्छा, तो क्या मैं आज मिथ्याभाषी भी हो गया ? रानी! तुम क्या कहने लगी ? क्या अपने वचनों से फिर कर माथे पर कलंक का टीका लगाऊंगा ? झूठ बोलकर रघकुल की मर्यादा को मिटाऊंगा ?

सुनी जाती नहीं प्यारी ! ये मुझसे सिसकियां तेरी।
वही करने को हूं तैयार जो कहदे जबां तेरी॥

सम्मिलित गाना

दशरथ—मानो मानो प्यारी, बात हमारी, क्यों करती मन भारी ?
कैकेयी—जाओ-जाओ न सताओ अपनी राह लो मैं हारी !
दशरथ—इक बार तो मुंह से कह दो क्या दोष है मेरा भारी ?
कैकेयी—मैं कौन आपकी होती ? कहते हो किसको प्यारी ?
मानो मानो प्यारी·····

शेर-दशरथ—राज है, घर है, कुटुम्ब है, सम्पदा है बेशुमार।
जान है, दिल है, जिगर है, सब तेरे ऊपर निसार॥

कैकेयी—क्यों कहो मैं जानती हूं आपको कितना है प्यार।
प्यार की बातें हैं मुंह में और बगल में है कटार॥

दशरथ—मत सता, मत जुल्म कर आहें न भर प्यारी मेरी।
रूठकर मुझसे किया चाहे है क्यों ख्वारी मेरी॥

कैकेयी—जाओ बस रहने भी दो करते हो क्यों ख्वारी मेरी।
क्या कहूं और क्या करोगे दूर दुशवारी मेरी॥

दशरथ—इक बार तो मुख से कह दो क्या दोष है मेरा भारी।
कैकेयी—मैं कौन आपकी होती कहते हो किसको प्यारी ?
मानो मानो·····

कैकेयी—बस महाराज ! मुझे सब ज्ञात है कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो ! वास्तव में मेरे प्रेमी हो या केवल सांसारिक व्यवहार करते हो।

समय आने पै खुलती है परीक्षा प्रेम होने की।
कसौटी पर ही होती है परख बेमैल सोने की॥

दशरथ—तो परख लो ! मेरे प्रेम को अपनी परीक्षा रूपी कसौटी पर परख लो :—

सभी तन मन भवन अपना तेरे इक प्रेम पर वारा।
छिपा लूं जिसको देने से है क्या संसार में प्यारा॥

तेरी जग में किसी वस्तु से समता हो नहीं सकती।
तेरे आगे तो प्राणों की भी ममता हो नहीं सकती ॥

कैकेयी—निस्सन्देह ! यदि आपको अपने वचनों का पास हो जायगा, तो मुझे अवश्य विश्वास हो जायगा :—

मालूम है, है राम पर हित आज तुम्हारा।
है राम प्राण आपके, आंखों का सितारा ॥
चिन्ता यदि है आपको, कुछ मेरे काम की।
खाजाओ मेरे सामने सौगन्ध राम की ॥

दशरथ—रानी ! यह तुम्हारा मिथ्या विचार है, क्या तुम समझती हो कि मेरा झूठा व्यवहार है :—

तजे आकाश तारागण, तजे सूरज दिशा अपनी।
तजे गम्भीरता सागर, तजे ठंडक हवा अपनी ॥
हिमालय का बने रज-कण, कहें मोती जो पत्थर को।
अनल हो चांद से पैदा, बहे गंगा भी उत्तर को ॥
हिरण खेलें महासागर में, जल की मछलियाँ थल में।
न फूलों में सुगन्धि हो, न शीतलता रहे जल में ॥
दिशाएं देखती हैं, देखते हैं महल ये सारे।
मही, आकाश, पर्वत साक्षी हैं चान्द और तारे ॥
कहा इक बार जो अन्तिम मेरा वह ही वचन होगा।
कसम है राम की दशरथ नहीं मिथ्या-कथन होगा ॥

कैकेयी—(खड़ी होकर) धन्य हो महाराज ! वीरों की यही आन है, क्षत्रियों की यही पहचान है। सुनिये ! जिस समय आप इन्द्र की ओर से शम्बरासुर से युद्ध कर रहे थे, तो आपने मुझे दो वर देने को कहा था।

दशरथ—कहा था ! वह हमें खूब याद है।

कैकेयी—तो वही मेरी धरोहर मुझे वापस दीजिये !

दशरथ—हां-हां ! कहो-कहो ! क्या चाहती हो ? जल्दी बोलो ! उसके लिये इतना आडम्बर रचाने की क्या आवश्यकता थी ? वह तो तुम्हारा अधिकार ही है ।

कैकेयी— गाना (लावनी)

दोहा—आज मुझे मंजूर हैं, लेने वे वरदान ।
विचलित हो जाना नहीं,रखना एक जबान।।

समझूंगी तब मैं सच्चे हो जब मुझ को यह वरदान मिले ।
वंचित हो राम,भरतको ही यह राजतिलक, सम्मान मिले ।।
जो वस्त्र हैं साधू-सन्तों के वे राम करें धारण तन में ।
त्यागी हों चौदह वर्षों को विश्राम करें जाकर वन में ।।
बस ये ही दो वरदान मेरे जो कुछ था साफ उचारा है ।
पूरे कर दो तो अच्छा है इस में उपकार तुम्हारा है ।।

दोहा—बार-बार होती नहीं, राजाओं की आन ।
सच्चे वीरों का कुशल,हो जग में सम्मान ।।

दशरथ— गाना (लावनी)

दोहा - हे पापिन इस राज पर क्यों करती अन्याय !
बदले ये किस पाप के लेने बैठी हाय ! !

सब आयु बीती विपता में ये कुंवर अभी तो पाये थे ।
तू अग्नि बनकर फूक गई फल फूल अभी जो आये थे ।।
जिस तरह अविद्या योगी का सब योग नष्ट कर देती है।
सच कहा है कुल्टा उसी तरह आनन्द-हर्ष हर लेती है ।।
जिस तरह कि विष वाली सुन्दर नागिन का पास नहीं अच्छा।
इस तरह से लोगो तिरिया का जग में विश्वास नहीं अच्छा।।
यह वह पापिन है जो पाले बस उसको ही खा जाती है ।
वह विषधर काली नागिन है अमृत पी जहर उगाती है ।।

कैकेयी—क्यों महाराज ! होश क्यों जाते रहे ? सुनते ही कलेजे में बाण सा क्यों लग गया ? क्या रघुकुल की मर्यादा झूठी हो

गई ? क्या हरिश्चन्द्र और दलीप की याद मिट गई ?
नहीं शक्ति थी जो वरदान के देने दिलाने की।
पड़ी थी क्या तुम्हें फिर राम की सौगन्ध खाने की ॥
बहाने ढूंढते फिरते हो क्यों इक बार हां देकर ?
बनाते हो वचन झूठा मुकरते हो जवां देकर ॥

दशरथ—धिक्कार है ! दुर्बुद्धि, मलीन आत्मा स्त्री तुझे धिक्कार है!

कैकेयी—हां धिक्कार है ! वचन पूरा करने का समय आया तो धिक्कार है! वरदान देने को कहा तो धिक्कार है ! महाराज!
कलेजा चाहिये पूरा वचन करके दिखाने में।
नहीं जब मन में साहस है तो क्या शेखी जताने में ॥

दशरथ—कुल्टा ! आज तूने इतना भयंकर रूप क्यों धारण कर लिया है ?
देख अन्यायी न बन आखिर तो मेरी नार है।
काल बनकर क्यों मुझे खाने को तू तैयार है ॥

कैकेयी—बस-बस, देख लिया आपका साहस ! ज्ञात हो गई आप की प्रतिज्ञा ! थोड़ा सा काम पड़ने पर ही ठण्डे-ठण्डे सांस लेने लगे ! जब कुछ और उपाय न सूझा तो स्त्रियों को ही दोष देने लगे।

दशरथ—रानी ! क्या तू वास्तव में ऐसी कठोर बन गई ? क्या तेरा हृदय ऐसा अन्यायी हो गया ? नहीं-नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि तूने कुछ हंसी की है,कोई गम्भीर दिल्लगी की है। प्यारी! तू मेरी अर्धांगिनी है, मेरे सुख-दुख की साथी है :—
मांगता हूं भीख बस इतना कहा मंजूर कर।
प्राण तक लेले मगर तू राम को मत दूर कर ॥

कैकेयी—नहीं, कदापि नहीं ! या तो राम तपस्वी का वेष बनाकर वनों को जाएंगे और या राजा दशरथ मुझे अपने हाथ से चिता में जलाएंगे।

दशरथ—आह ! हे दूध पीकर जहर उगलने वाली नागिन ! आखिर

राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है ? अरी कुल्टा, वह तो तुझे सब से अधिक प्यारा है। निर्भागिन ! इस कष्ट को मैं कैसे सहन करूंगा ? राम के बिना कैसे जीवित रह सकूंगा ? याद रख ओ निर्दयी, याद रख !

गाना

इस वंश के अब नाश में केवल पलों की देर है।
रघुकुल को दीपक बुझ चला बस राज्य में अन्धेर है ॥
जिस घर में सुन्दर कामिनी, गाती थीं मंगल रागनी।
उस घर में हो अब पापिनी, शमशान जैसा ढेर है ॥
जीवन की रजनी में अहा! चमका था इक तारा जरा।
वह छिप गया तो फिर सदा अंधेर ही अंधेर है ॥
जिस में कुशल वहती पवन, कलियां खिलीं फूले सुमन।
वह बाग मुरझाया सा वन, यह भाग्य का ही फेर है ॥

कैकेयी—बस रहने दीजिये ! राम भी सीधे हैं, कौशल्या भी सीधी है और आप भी सीधे हैं, किन्तु जो कुछ कह चुकी हूं उसे नही लौटा सकती ! आप कुछ भी कहें परन्तु मैं आपकी चाल में नहीं आ सकती !

सुन चुकी हूं बहुत कुछ राजन् बहाने आप के।
है कपट मन में, वचन लेकिन सुहाने आपके ॥

दशरथ—लुट गया ! हे कुल घातिनी डाइन ! मैं अच्छी तरह लुट गया ! दुष्टा ! यह तूने क्या विचारा है ? मेरी आशाओं का उपवन क्यों उजाड़ा है ?

गाना

टेक— नहीं है अच्छा यह व्यवहार !

अन्तरा (१) राम गमन बन को करें तो हो कैसे सन्तोष ?
प्राण पखेरू उड़ चलें और लुटे अवध निर्दोष।

मिटे सब जनता का आधार-नहीं है अच्छा ···

(२) रिस को त्यागो क्रोध तजो और साजो मंगल साज।
निश्चय ही जब तू कहे तो देदूं भरत को राज॥
मेरे हैं दोनों प्राणाधार-नहीं है अच्छा·····

(३) जल बिन मछली रह सके और कुशल पति बिन नार।
राम बिना जीवन मेरा, है एक घड़ी दुशवार॥
लगे सूना सारा संसार, नहीं है अच्छा·····

आह! अग्नि व्याप रही है, हृदय जल रहा है, अन्धकार छा रहा है; मृत्यु का दृश्य सामने आ रहा है! ओह!

आंख में ज्योति नहीं, दिल पर मेरा काबू नहीं।
कह रहा है कोई कानों में कि दशरथ तू नहीं॥

कैकेयी—क्यों महाराज! क्या मन अधिक व्याकुल हो रहा है?

दशरथ—देख! हे कुल-कलंकिनी इधर देख! महा अधर्मिन! इस ओर देख! आज दशरथ अपने कर्त्तव्य पालन के लिये विदा हो रहा है; यह प्राण पखेरू तेरी कुटिलता से हवा हो रहा है:—

जा रहा हूं आज दुनिया से सदा के वास्ते।
घर हुआ बरबाद मेरा सर्वदा के वास्ते॥
मिट गया इस पापिनी की मामता के वास्ते।
नाश अपना कर लिया इस बेवफा के वास्ते॥
सांप पाला आस्तीं में आप अपनी हान की।
हो गई वरदान के ही साथ ग्राहक जान की॥

कैकेयी—वाह महाराज! क्या इसी बिरते पर इतना जोश दिखाते थे? जबान के ही घोड़े दौड़ाते थे? याद कीजिये! जरा अपने पूर्वजों की ओर भी ध्यान दीजिये!

गाना (लावनी)

दोहा—हरिश्चन्द्र ने किस तरह रक्खा कुल का मान।
राजा शिवि ने आन पर कैसे त्यागे प्राण॥

क्या सगर, दधीची, भागीरथ का मान यही हे राजन है?

क्या यही सूर्यकुल की नीति और मर्यादा का पालन है ॥
मेरे दोनों वरदानों का जो देना तुमको भारी है।
कहदो हमने यह कहा नहीं क्या कहने में दुशवारी है ॥
पर काम नहीं यों चल सकता, बातों में ही बहकाते हो।
वचनों को अपने भूल गये कुलमान-मान चिल्लाते हो ॥
हां याद रहे यह भी राजन् ! जो कुशल वीर कहलाते हैं।
प्राणों को देकर प्राणों पर वे अपना वचन निभाते हैं ॥

दशरथ—आह ! दुष्टा ! बस शान्त होजा, जोशीले को अधिक जोश न दिला। याद रख तू मुझे ही नहीं उजाड़ती है, अपने पैरों पर भी आप ही कुल्हाड़ी मारती है ! खैर ! तू जान और तेरा काम !

आज अर्पण है तुझे सुख-सम्पदा भी मान भी।
ले यदि लेना ही है, वरदान भी और प्राण भी ॥

[मूर्छित हो कर गिर जाना]

कैकेयी—महाराज ! इतने व्याकुल क्यों हुए जाते हो ! क्या शूरवीर कहलाकर एक साधारण सी बात से घबराते हो ?—

जो दानी सत्यवादी हैं न संकट में झिझकते हैं।
वचन का पालन है जिनको वे कब रोते बिलखते हैं ॥

दशरथ—(होश में आकर) न सता ! हे नाश कारिणी ! अभागे दशरथ को अधिक न सता; मेरे दुखी हृदय को और दुखी न बना ! याद रख ! यह सुहावनी अयोध्या भी बसेगा; संसार में राम की बड़ाई भी फैलेगी; भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे, मेरा शोक भी प्राणों के साथ समाप्त हो जायगा; परन्तु तेरा यह कलंक, तेरा यह कुलघातिनी नाम सदैव के लिये इतिहास में लिखा जायगा; तेरा जीवन घृणा की दृष्टि से देखा जायगा। मैं जानता हूं कि जिस प्रकार सिंह दूसरे का मारा हुआ शिकार नहीं खाता है ;उसी प्रकार भरत भी तेरे द्वारा प्राप्त किया हुआ राज्य

नहीं चाहता है। हाय राम ! हाय राम !

दासी—(आकर) महारानी जी ! मन्त्री जी आना चाहते हैं !

कैकेयी—आने दो !

[सुमन्त जी का प्रवेश]

सुमन्त—हैं ! अन्धेरी रात में जगमगाने वाले शीश-महल की यह दशा ! आंखों को चकाचौंध करने वाले राजभवन की यह अवस्था ! विधाता खैर तो है। :—

छा रही है इक निराशा सी भरे घर बार पर।
दे रहे अशगुन दिखाई भवन के आकार पर॥
शोक में डुबा हुआ आता. नजर सारा महल।
हे प्रभु ! इक रात में ही हो गया कैसा बदल॥

(मन्दर जाकर) हैं ! सूर्य उदय होने वाला है और राजभवन में धीमा-धीमा दीपक टिमटिमा रहा है; चारों ओर निराशा का अन्धकार छा रहा है। (दशरथ को देखकर) ओहो ! ये तो महाराज भी पृथ्वी पर पड़े हुए बिलबिला रहे हैं और राम ही राम की रट लगा रहे हैं।

सिरपेंच कहीं और ताज कहीं बिखरे माला के दाने हैं।
कुछ होश नहीं तनका इनको और गम की चादर ताने हैं॥
आभूषण सब बिसराये हैं और शोक का हैं श्रृंगार किये।
आंखों में छलकते हैं आंसू ये क्या अशगुन करतार किये॥

(कैकेयी से) महारानी जी ! आपने कैसा स्वरूप बनाया है ? और महाराज को किस सन्ताप से जलाया है ?

कैकेयी—मन्त्री जी ! पहले राम को बुला लाइये फिर सब ज्ञात हो जायगा !

सुमन्त—जैसी आज्ञा। (जाना)

दशरथ—हे सूर्यवंश के गुरु सूर्य ! आज उदय न होना; अयोध्यापुरी

की दुर्दशा को देखकर आपको बड़ा ही दुःख होगा! हे आकाश में चमकने वाले तारो ! अपनी आंखें बन्द कर लो ! आज तुम दशरथ की निराशा को न देख सकोगे ।

पवन के सामने का एक बुझता सा दिया हूं मैं ।
प्रलय की आग में अब आप ही गिरने चला हूं मैं ॥
मेरी विनती है तुम मत देखना दशरथ अवस्था को,
निकल आयेंगे आंसू देखकर लुटती अयोध्या को ॥

[सुमन्त और राम का आना]

राम—पिता जी ! पिता जी ! आज यह कैसी दशा है ?:—

कभी आंसू निकलते हैं, कभी आहें निकलती हैं ।
कभी कुछ होंट हिलते हैं, कभी आंखें उबलती हैं ॥
हुए व्याकुल बिसारी सारी सुध-बुध आज निज तन की।
बताओ शोक क्या तुम को जो ऐसी दुर्दशा मन की ॥

(कुछ रुक कर) आह ! बोलते भी नहीं ! कोई महान दुःख है। ये तो मुझे देखते ही गले से लगा लेते थे और संसार के सारे दुःख भुला देते थे। माता जी ! आप ही इसका कारण बताओ ! आप ही मेरे मन की शंका मिटाओ ।

कैकेयी—बेटा ! महाराज ने मुझे दो वरदान दिये हैं । एक में भरत को राज और दूसरे में तुम्हारे लिए चौदह वर्ष का वन-वास ।

राम—अहो भाग्य ! यह तो बहुत ही अच्छी बात है ! इसके कारण इतना दुख मानने की कौनसी बात है !

गाना (लावनी)

दोहा—हे माता ? संसार में, यों तो पुत्र अनेक ।
सेवक जो मां-बाप का, पुत्र वही बस एक ॥
ये अहो भाग्य मेरे माता ! जो राज भरत जी पाते हैं ।
ऐसे अवसर तो जीवन में बस कभी कभी ही आते हैं ॥
हम पुत्र हैं सच्चे क्षत्री के अपने सत्धर्म पै निश्चल हैं ।

दुख हम को एक यही माता क्यों पिता हमारे व्याकुल हैं ॥
बन गमन करूं निज इच्छा से इसका तो तनिक हिरास नहीं।
इस बात के कारण इतना दुख इसलिये मुझे विश्वास नहीं ॥
राजा तो धीरज वाले है फिर इनको इतनो बेजारी।
निश्चय यह कुशल हुआ मन को अपराव हुआ मुझ से भारी ॥

बार-बार सौगन्ध है, तुम को मेरी मात।
ठीक-ठीक हमसे कहो, जो कुछ गुजरी बात ॥

कैकेयी—बेटा ! मैं सच कहती हूं कि इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं। जब से बनवास का नाम सुना है तभी से तुम्हारे प्रेम के कारण व्याकुल हो रहे हैं।

राम—तो क्या मैं पिता जी से स्वयं बातें कर सकता हूं ?

कैकेयी—नहीं बेटा ! इन्हें अधिक कष्ट पहुंचाना ठीक नहीं। बस तुम अपने पिता के वचनों को निभाओ और भगवे वस्त्र धारण करके शीघ्र ही बनों को चले जाओ।

राम—जैसी आज्ञा माता जी !

दशरथ—हाय राम ! हाय राम !

मन्त्री—महाराज ! रामचन्द्र जी आ गए हैं।

राम—पिता जी प्रणाम।

दशरथ—(गले लिपटा कर) अहा बेटा !

गिरी छाती पर बिजली और दिल में आग जलती है।
पड़ा सिर पर पहाड़ और आंख से सरिता उबलती है ॥
मेरी आशाओं की दुनियाँ में अब अन्धेर छाया है।
मेरे आबाद घर को हाय ! दुष्टा ने मिटाया है ॥

राम—शान्त ! पिता जी शान्त !

दशरथ—राम ! राम, मेरी आंखों की ठण्ठक और दिल के आराम!
बेटा ! तुम फिर कभी इस अभागे की सूरत नहीं देखोगे।

तुम क्या कहोगे ? अपने हाथों से पाला,अपनी आंखों में रक्खा और अब आप ही बनों को भेज रहा हूं। अफसोस ! बेटा ! मैं कैसे जीऊंगा ?:—

तेरी छाया मेरी माया—तेरा दर्शन मेरा जीवन।
तेरी ही ज्योति आंखों में तेरा यौवन मेरा तन मन॥
दिखाई कुछ नहीं देता मुझे तुझ बिन जगत भर में।
तेरे इस चन्द्र मुख से ही उजाला है मेरे घर में॥

राम—पिता जी ! शोक और सन्ताप को दूर कीजिए। प्रसन्न मुख हो कर आज्ञा दीजिए। मैं आपके वचनों का पालन करने में बड़ा सुखी हूं :—

है पुत्र वह जो सच्चा मां बाप का पुजारी।
मेरी खुशी है उसमें जिसमें खुशी तुम्हारी॥

दशरथ—अहा ! परमात्मा !

बुरी दृष्टि से देखे चाहे सब संसार जीवन को।
गिरे आकाश से बिजली जलादे राज को धन को॥
महीनों चाहे हो जायें मुझे अन्न जलके दर्शन को।
परन्तु राम मुझको छोड़कर जाये नहीं बन को॥

कैकेयी—बेटा ! जब तक तुम इनके पास बैठे रहोगे इन्हें सन्तोष नहीं आएगा, इनका क्लेश बढ़ता ही जाएगा ; इसलिए शीघ्र जाकर माता कौशल्या से आज्ञा ले आओ और भगवे वस्त्र धारण करके बनों को चले जाओ।

राम—जैसी आज्ञा माता जी ! (जाना)

दशरथ—हाय राम ! हाम राम !

मेरा आनन्द लूटा हाय दुष्टा ने बहाने से।
चला है हस उड़कर हाय अब अपने ठिकाने से॥

[मूर्छित हो जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(कौशल्या का महल)

राम—(आकर) माता जी प्रणाम !

कौशल्या—चिरन्जीव रहो पुत्र ! आओ पहले कुछ भोजन पालो और फिर आनन्द से राजगद्दी सम्भालो ।

राम—बस माता जी ! खाने पीने की क्षमा कीजिये और शीघ्र वन गमन की आज्ञा दीजिये ।

कौशल्या—हैं ! यह क्या सुनाई ? इसने ने तो मेरी सुध-बुध ही बिसराई !

राम—हां माता जी ! अब राज के बदले राम की बन को तैयारी है, इसलिये यहां ठहरना पल-पल भारी है ।

गाना

मिल गई आज्ञा मुझे अब बन-गमन के वास्ते ।
छोड़ता हूं इस नगर को निज-परण के वास्ते ॥
दी भरत को राजगद्दी आज से महाराज ने ।
बन-गमन मुझको दिया अपने वचन के वास्ते ॥
शोक मेरे बिन कभी पाना न हे माता मेरी ।
काट कर चौदह बरस आऊं मिलन के वास्ते ॥
जिन को है सन्तोष वे संकट से घबराते नहीं ।
है महा आनन्द दुख में सन्त जन के वास्ते ॥

कौशल्या—आखिर ऐसी क्या बात हुई ? मुझे खोलकर तो बताओ ।

राम—सुना है किसी समय पिता जी ने माता कैकेयी को दो वरदान दिये थे । सोई आज माता जी ने एक वरदान में भरत को राजतिलक और दूसरे में मेरे लिये चौदह वर्ष का वनवास मांग लिया है ।

कौशल्या— अफसोस !

गाना

उदय होकर मेरा सौभाग्य-तारा मन्द आया है।
चमकता सूर्यकुल का चान्द राहू ने दबाया है॥
न यह मालूम था मुझको कि यह सकट भी आएगा।
विधाता ने बुढ़ापे में यह कैसा दुख दिखाया है॥
हुआ था बाद मुद्दत के उजाला मेरे आंगन में।
चला झोंका पवन का हाय वह दीपक बुझाया है॥
समझती थी कि अब सुख-संपदा की मैं भी हूं भागी।
गिरी आकाश से बिजली कुशल साधन जलाया है॥

राम—माता जी ! महाराज की आज्ञा मेरे और आप के लिये शिरोधार्य है, इसलिये अब बन को जाना ही अनिवार्य है।

कौशल्या—अच्छा बेटा ! यदि महाराज ऐसा ही चाहते हैं, तो मैं कब रोकती हूं। किसी का कोई दोष नहीं केवल अपने भाग्य को कोसती हूं। अच्छा जाओ ! और पिता के वचनों का पालन करो।

[सीता जी का प्रवेश]

सीता जी—माता जी प्रणाम ! स्वामी को कैसी आज्ञा दे रही हो।

कौशल्या—क्या बताऊं बेटी ! कैसे बताऊं ? मेरी वाणी में इतनी शक्ति कहां जो तुम्हें यह समाचार सुनाऊं।

सीता जी—तो प्राणनाथ ! आप ही बताइये। आप ही मेरी उलझन को मिटाइये।

राम—प्रिय ! बात बहुत साधारण है। इन का दुखी होना तो व्यर्थ सा जान पड़ता है।

सीताजी—फिर भी ! जरा मैं भी तो सुनूं।

राम—प्रिय ! किसी समय माता कैकेयी ने महाराज से दो वरदान

पाए थे; आज उन्होंने भरत के लिए सिंहासन और मेरे लिये बन-गमन मांग लिया। बस इतनी सी बात है :—

पिता आज्ञा से मुझको बन में जाना ही जरूरी है।
जबां से जो कहा उसका निभाता भी जरूरी है॥

सीता जी—निस्सन्देह ! :—

जबां से जो कहा उसका निभाना भी जरूरी है।
परन्तु साथ में दासी का जाना भी जरूरी है॥

गाना

टेक—मैं भी संग चलूंगी नाथ ! हूं मैं चरणों की अधिकारी।
अन्तरा (१) बन को जाते हैं जब राम-फिर क्या रहा मेरा यहां काम?
मुझको सारे ये आराम, लगते हैं विष भरी कटारी॥
मैं भी संग……

(२) स्वामी सत्य हैं मेरे बैन, प्यासे बिन दर्शन के नैन।
मुझको चरणों में ही चैन, तुम बिन जीवन मेरा भारी॥
मैं भी सग……

(३) मेरा जीवन का है साथ, दासी चरणों की हूं नाथ।
मुझको छोड़ अकेले जात,यह क्या मनमें आज विचारी॥
मैं भी संग……

(४) करती हाथ जोड़ अरदास, मेरी पूरी कर दो आस।
रहना मुझे तुम्हारे पास, लेली मैंने शरण तुम्हारी॥
मैं भी संग……

राम—प्यारी ! तुम व्यर्थ हट करती हो, मेरे साथ बनों में जाकर क्यों दुख भरती हो।

गाना

जाओ न तुम कठिन है बनों का प्रिय गमन।
होगा न तुमसे प्यारी ! कभी कष्ट वह सहन॥

सीते ! तुम्हारे वास्ते मजबूरी कुछ नहीं।
मुझको तो है निभाना महाराज का वचन ॥
सेवा करो कि सेवा बड़ों की ही लोक में।
कल्याणकारी, कष्ट निवारण है दुख हरण ॥
मत हो अधीर जानकी धीरज से काम लो।
चौदह बरस के बाद कुशल होगा फिर मिलन॥

सीता जी—नाथ ! जिस प्रकार जीव के बिना शरीर और जल के बिना सागर शोभा हीन होता है, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री का जीवन दुखी और मलीन होता है। यदि मैं आपके चरणों से अलग हो जाऊंगी तो सच मानिये कि महान दुख पाऊंगी।

गाना

बिना आपके यहां गुजारा नहीं है।
शरण के सिवा कुछ सहारा नहीं है ॥
करूंगी मैं आराम पृथ्वी पै सुख से।
मुझे चैन महलों का प्यारा नहीं है ॥
न स्वादिष्ट भोजन की मन में है इच्छा।
सकल भोग पर चित्त हमारा नहीं है ॥
यह वैभव यह माया इन आभूषणों का।
कभी ध्यान मन में विचारा नहीं है ॥
सभी तुच्छ वस्तु कुशल हैं नजर में।
यदि एक दर्शन तुम्हारा नहीं है ॥

राम—प्रिय ! जैसे आमों के बाग में रहने वाली कोकिल बन में महा दुख पाती है, उसी प्रकार राजभवन को छोड़कर कोमल स्त्री भी पछताती है।

सम्मिलित गाना राम-सीता (तर्ज—जाओ दिलबर दिल)

अन्तर. राम—वनवास में विपता भारी, क्यों हट करती हो प्यारी।

अन्तरा—छाड़ के जाना हम को सम्पदा सारी ॥
,, सीता—मुझ को तो प्यारी स्वामी सूरत तुम्हारी।
राम—बनवास में विपता·····

शेर राम—कहीं है रस्ता टेढ़ा, कहीं कंकर कहीं पत्थर।
इधर यह तन महा कोमल उधर जंगल महा दुस्तर॥
,, सीता—कठिन वह रास्ता कैसा ? कहाँ कँकर कहाँ पत्थर।
जहां पर आप के चरणों के दर्शन का मिले अवसर॥

अन्तरा राम—खाना मिलेगा वहां फूल फुलारी !
,, सीता—मुझ को नहीं है स्वामी वह भी दुखारी॥
राम—वनवास में विपता·····

शेर राम—न ये आराम महलों के न यह बिस्तर बिछौना है।
न ये सामान हैं सुख के नगन भूमि पै सोना है॥
,, सीता—मुझे स्वीकार बिन दर्शन नहीं महलों में सोना है।
तुम्हारी चरण-सेवा ही मेरा बिस्तर बिछौना है॥

अन्तरा राम—बन के रहन में प्यारी जीवन हो भारी।
सीता—आप के होते मुझ को सब है सुखारी॥
राम—वनवास में विपता·····

सीता—प्राणनाथ ! यदि आपको यह विश्वास हो कि चौदह वर्ष के पश्चात आप मुझे जीवित पायेंगे तो अवश्य छोड़ जाइये, नहीं तो अपने साथ ले चलिये।

तुम्हें बाधा नहीं होगी सिया के साथ जाने में।
मेरा भी हाथ होगा आपका संकट बटाने में॥

कौशल्या—बेटा ! यह कदापि नहीं मानेगी। जानकी अपने पतिव्रत धर्म का अवश्य पालन करेगी, इसलिये इन्हें भी साथ ले जाना ही उचित है।

राम—हां, मुझे भी ऐसा ही विश्वास है। अच्छा प्रिय! जैसी तुम्हारी इच्छा।

सीता—उपकार! प्रभो! महा उपकार! (कौशल्या के पैर पकड़ कर) अच्छा माता जी! आशीर्वाद दीजिये और बनों में पति-सेवा करने की आज्ञा कीजिये।

कौशल्या—अवश्य जाओ बेटी! अपना पतिव्रत धर्म अवश्य निभाओ। यद्यपि इस समय मुझे महान क्लेश है किन्तु धर्म पालन के लिये तुम्हें आनन्द मन से विदा करती हूं। विधाता तुम्हें कुशल से रखें!

गाना (तर्ज—पड़ी नार गौतम यह दुख की दुखारी)

चलो जाओ भगवान रक्षक तुम्हारा,
वही बेसहारों को देगा सहारा।
टलेंगी कभी तो निराशा की घड़ियां,
मिलेगा कहीं डूबतों को किनारा।
पती की शरण में गती है सती की,
उसे छोड़ मिथ्या जगत का पसारा।
सुनो हे प्रभो, दीन की प्रार्थना भी॥
निराशा में निर्बल ने तुम को पुकारा।
समय पर 'कुशल' पूर्वक लौट आवे,
सहित जानकी के दुलारा हमारा॥

लक्ष्मण—(आकर) भ्राता जी! मुझे आपके बन गमन का समाचार मिल चुका है; क्या अकेले ही जाने का विचार है?

राम—नहीं भाई! जानकी भी साथ चलने को तैयार है।

लक्ष्मण—और यह सेवक!

राम—भाई, तुम अभी बालक हो। बन का कठिन जीवन कैसे बिताओगे? राजभवन को छोड़कर बहुत दुख पाओगे। इस लिए मेरा कहना मानो और माता-पिता की सेवा में ही

कल्याण जानो।

लक्ष्मण—महाराज ! आपका उपदेश बड़ा हितकारी है, किन्तु आपके बिना लक्ष्मण का अयोध्या में रहना बहुत भारी है। हे नाथ ! मेरे तो मात-पिता बन्धु-सखा, स्वामी और रक्षक सब आप ही हैं :—

इन्हीं चरणों की सेवा में मुझे आनन्द दूना है।
यदि तुम हो तो सब कुछ है नहीं तो घर भी सूना है।।

राम—प्यारे लक्ष्मण ! तुमने यह भी विचारा है कि अयोध्या का क्या सहारा है ?

लक्ष्मण—महाराज !

जगत में मैंने तुम को ही पिता अरु मात समझा है।
जहां तुम हो वहीं भ्राता! मेरी प्यारी अयोध्या है।।

गाना

टेक—चलूं मैं भी भ्राता बन को।

अन्तरा (१) सेवा में स्वामी की रहता हरदम आज्ञाकार।
अवध नगर से जब स्वामी के जावें चरण सिधार।
नहीं यहां रहना लक्ष्मण को, चलू मैं भी·····

(२) जहां तुम्हारा वास हो, बस वहीं मुझे आराम।
बिन सेवा चरणों की स्वामी, है जीवन निष्काम।।
तरस जाऊंगा दर्शन को, चलू मैं भी·····

(३) दुस्तर बन है राह है टेढ़ी और जंगल दुश्वार।
मार्ग में चलते-चलते जब भी हो जाओ लाचार।।
दबाऊं स्वामी चरणन को, चलूं मैं भी·····

(४) माता मेरी सिया जानकी चलें आपके संग।
बन की रीति नहीं है देखी कोमल इनके अंग।।

करूं हलका बन भरमण को, चलूं मैं भी·····

राम—भाई ! तुम मेरा कहना मानो और बनों में जाकर व्यर्थ कष्ट उठाने की न ठानो ।

गाना

भ्राता लक्ष्मण, बन का भरमण, तुमसे होना भारी है ।
संग हो होते, सुख को खोते, ऐसी क्या लाचारी है ॥
धूप पड़े और नग्न है भूमि चलना नंगे पैरों होगा ।
बन है निर्जन, रूखे भोजन, पीने को जल खारी है ॥
माल खजाना होगा बेगाना, महल अटारी सब छूटेंगे ।
गम की घटा हो,शीश जटा हो,रैन महा दुखकारी है ॥
कौन सुनेगा दीन दुखी जनता का रोना हाय कुशल !
यह तो बेचारी, है दुखयारी, आप ही कर्मों मारी है ॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ! मैं आपकी आज्ञा पर प्राण तक देने को तैयार हूं परन्तु यह बात मानने से लाचार हूं । यदि मैं जानता कि आपका वियोग किसी प्रकार भी सहन कर सकता हूं तो इतनी हट कदापि न करता और आप की आज्ञा के बाहर पग न धरता :—

गये जब आप ही बन को तो सुख का कौन साधन है ।
तुम्हारे बिन प्रभु मेरा न मंगल है न जीवन है ॥

राम—प्यारे लक्ष्मण ! मैं जानता हूं कि तुम संसार में सबसे अधिक मुझ पर श्रद्धा रखते हो, परन्तु भाई भरत और शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में अयोध्या को किस का सहारा होगा ! माता सुमित्रा का किस प्रकार गुजारा होगा ।

इधर व्याकुल पिता होंगे उधर मात दुखी होगी ।
करेंगे शोक नर नारी सकल जनता दुखी होगी ॥

लक्ष्मण—प्रभो ! मैं पहले ही कह चुका हूं कि संसार दुख का भण्डार

है; यहां कैसा प्रेम और किस का प्यार है। सारे जीव स्वार्थ के साथी हैं, मेरे तो केवल आप ही नाती हैं। याद रखिये !

छोड़ कर मुझको यदि भगवान बन को जाएंगे।
मैं अयोध्या में रहूंगा, प्राण बन को जाएंगे॥

गाना

बस आप के बिन हे प्रभो ये प्राण रह सकते नहीं;
निर्बल हैं दुखिया हैं मगर दुख अपना कह सकते नहीं।
दुनिया के सारे संकटों की कुछ नहीं परवाह है;
लेकिन जुदाई आप की पल भर को सह सकते नहीं।
माता-पिता, भाई-बहिन, दुनिया के रिश्ते हैं बहुत;
लेकिन किसी को भी यहां, अपना तो कह सकते नहीं।
केवल तुम्हारे प्रेम-मद में मोम हो जाता है दिल;
वरना किसी दुख में 'कुशल' ये अश्क बह सकते नहीं।

सुमित्रा—बेटा राम ! लक्ष्मण तुम्हारा साथ कदापि नहीं छोड़ेगा, इसलिये अधिक विलम्ब करने में क्या चतुराई है। बस साथ ले जाने में ही भलाई है।

राम—अच्छा माता जी ! यदि आपकी भी यही इच्छा है तो मुझे स्वीकार है।

लक्ष्मण—सुमित्रा से) माता जी ! लक्ष्मण चरणों से सिर झुकाता है और बन जाने की आज्ञा चाहता है।

सुमित्रा—हां बेटा अवश्य जाओ ! राम और जानकी की सेवा में मन लगाओ। याद रखना—

गाना

वही घर तेरा है नगर तेरा जहां जानकी जहां राम है।
सदा इनके चरणों में मान है सदा इनकी सेवा में नाम है॥
यही भ्राता माता गुरु तेरे यही देवता यही देव हैं।

यही आस है यही आसरा यही स्वर्ग का तेरे धाम हैं ।।
सदा राग-द्वेष और ईर्ष्या,मद मोह सबका त्याग कर ;
रहे प्रीति चरणों में तेरी भक्ति यही निष्काम है ।।
रहे ध्यान इस उपदेश का न हो मन में मेरी भी मामता।
चलो जाओ इनके ही सग बन,नहीं अब तेरा यहां काम है।

लक्ष्मण—माता जी ! आपके वचन सदा प्राणों के साथ रहेंगे ।

कौशल्या—बेटा राम ! चलती बार मुझे भी तुम से कुछ कहना है ।
आओ! जरा इधर आओ और मेरी बातों पर ध्यान लगाओ!

गाना (लावनी)

दोहा—सुनो राम बेटा जरा इधर लगाकर कान ।
सीता-लक्ष्मण का मेरे रखना बन में ध्यान ।।
लक्ष्मण कोमल है बच्चा है इसको संकट मत पहुंचाना ।
यदि भूल भी कोई कर बैठे तो ध्यान नहीं मन में लाना।।
सीता भी राजदुलारी है इसका भी तुमको ध्यान रहे ।
वह करना बेटा काम वहां जिससे दुनिया में मान रहे ।।
जो कष्ट पड़े खुद सह लेना मत इनको तरसाना बेटे ।
उपदेश जो मैंने दिया तुम्हें उसको न भूल जाना बेटा ।।

राम—माता जी ! आप निश्चन्त रहें । आपके वचनों का अवश्य पालन करूंगा ।

कौशल्या—अच्छा जीवित रहो, भगवान तुम्हारी रक्षा करें ।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(कोप-भवन)

दशरथ—वियोग ! तू कितना प्रबल है ! तेरा प्रभाव कैसा निश्चल

है ? तेरा नाम सुनते ही मन में हलचल मच जाती है, आत्मा में अशान्ति और विचारों में भागड़ पड़ जाती है। :—

वियोगी को भला संसार में कब चैन आता है।
विरह की आग में जल के वह परलोक जाता है॥

[राम, लक्ष्मण, सीता का प्रवेश]

राम—पिता जी ! अब हमारा प्रणाम लीजिए और बन जाने की आज्ञा दीजिये।

दशरथ—(रोकर) आह विधाता ! यह कौन से पाप का फल है, यह किस अन्याय का दण्ड है ? क्या तूने मेरे भाग्य में तड़प-तड़प कर जान देना ही लिखा था ?

राम—पिता जी ! आप तो ज्ञानी और धैर्यवान हैं, धर्म-नीति में सुजान हैं, फिर सोचिये, इस प्रकार व्याकुल होने से क्या मिलेगा ? फूट-फूट कर रोने से क्या लाभ होगा ? मन को ठिकाने कीजिये और हमें बन के लिये उपयोगी शिक्षा दीजिये।

कैकेयी—बेटा ! अब तुम्हारे शरीर पर ये राजकीय वस्त्र शोभा नहीं देते, इसलिये ली ये भगवे वस्त्र पहन लो और बन की राह लो।

राम—लाइये माता जी !

बड़ा आनन्द है हम को मिले उपहार भक्तों के।
ये प्यारे वस्त्र हैं योगी जनों के और सन्तों के॥

[तीनों का भगवे वस्त्र पहनना]

दशरथ—बेटा राम ! सीता और लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ क्यों आये हैं ? क्या इन की भी बन को तैयारी है ?

राम—पिता जी ! मैंने इनको बहुत समझाया परन्तु ये नहीं माने। अन्त में माताओं की आज्ञा से साथ लाना ही पड़ा।

दशरथ—हाय बेटा ! तुम तो इनको भी लिये जाते हो मुझे इस विपत काल में किस पर छोड़ जाते हो ?

कौन पूछेगा जो इस मन की अवस्था होगी।
हाय आंखों में निराशा ही निराशा होगी॥

(लक्ष्मण को गले लगाकर) मेरी नन्ही सी कली ! मेरी आशाओं के खिले हुए फूल ! क्या तू भी इस भवन को उजाड़ कर जाने वाला है ?

तू मेरा जीवन भी है घर की मेरे शोभा भी है।
तू न जा बन को कि तू आशाओं की दुनिया भी है॥

(सीता को प्यार करके) बेटी सीता ! मेरी अंधेरी कोठरी के दीपक ! क्या तेरी भी तैयारी है ? क्या अभागे दशरथ को शान्ति देने के लिये तुझे भी यहां ठहरना भारी है :—

किस तरह हाय यह सन्तोष गवारा होगा।
प्राण लुट जाएंगे दिल शोक से पारा होगा॥
हाय उस आन मुझे किसका सहारा होगा।
जान का जान से जिस वक्त किनारा होगा॥
लोग देखेंगे उजड़ती हुई दुनिया मेरी।
डूबती मौत के मझधार में नय्या मेरी॥

राम—पिता जी ! इस प्रकार रोने से काम नहीं चलेगा। मन को शान्ति दीजिये और हमें विदा कीजिये।

दशरथ—(कैकेयी से) आह ! हे कुलकलङ्किनी ! मुझे क्या मालूम था कि तू ऐसा अकाज करेगी ? सारे नगर का उजाड़ कर श्मशान पर राज करेगी ! आह, विघ्नकारिणी ! तूने सर्वनाश ही कर डाला।

हाय नागिन आज तेरी पूरी घातें हो चलीं।
हा चली दशरथ के बस जीवन की बात हो चलीं॥

राम—महाराज ! अब अधिक विलम्ब न कीजिये, बन जाने की आज्ञा दीजिये।

दशरथ—अच्छा बेटा ! ईश्वर तुम्हारा निगहबान है, परन्तु दशरथ अब कोई घड़ी का मेहमान है। (सुमन्त से) हे सुमन्त ! मेरा

फुलवारी जा रही है तुम भी इनके साथ जाना और बन दिखा कर तथा गंगा स्नान कराकर वापस ले आना।

सुमन्त—जैसी आज्ञा महाराज।

[तीनों का जाना, पीछे सुमन्त का चलना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

[राम, लक्ष्मण और सीता का नगर में जाना और अयोध्या वासियों का दुख पाना।]

राम, सीता, लक्ष्मण का सम्मिलित गाना

तर्ज—छोटी बड़ी सूइयाँ रे·····

टेक—जाते हैं बन को सिधार! हे प्यारे जनता वासियो।
छुटने का दुख है अपार! हे प्यारे जनता वासियो॥

अन्तरा (१) छुटतो है अब तो हमसे नगरी यह प्यारी;
है जीवन हमारी, यह प्राणों से प्यारी॥
होवे सदा गुलजार। हे प्यारे·····

(२) भूलके लाना नहीं ध्यान हमारा, यह मान हमारा, सम्मान हमारा।
कहते हैं सब से पुकार। हे प्यारे·····

(३) शोक न मानें कभी माता हमारी, हैं दीन बिचारी हैं कर्मों की मारी।
तुम ही पिता का हो आधार। हे प्यारे·····

प्यारे नगर वासियो! तुम आनन्द से रहो! हम पिता के वचनों का पालन करने के लिये बनों को जाते हैं और आप लोगों से केवल यही चाहते हैं कि राज भक्त बने रहना और हमारे पिता तथा माताओं के मन को शान्ति दिलाते रहना।

प्रजावासी—हे नाथ! आपके बिना सारी अयोध्या मरघट के समान है, नगरवासियों का जीवन दुख की खान है। हम आपके साथ चलेंगे।

राम—प्यारे जनों ! अपने परिवार को छोड़कर कहां जाते हो ? बन में जाकर वृथा क्यों कष्ट उठाते हो ?

सीता—भाइयो ! विधाता की करनी अटल जान कर मन को समझाओ और अपने-अपने घरों को लौट जाओ ।

हमारा है यही अशीष नगरी का पसारा हो ।
फलो फूलो रहो आनन्द धन सन्तान वाला हो ।।

प्रजावासी—माता जी ! अब नगरी में सुख का कौन सा साधन है ? हमारी तो वही नगरी है जहां आप का दर्शन है ।

[सुमन्त का रथ लेकर आना]

सुमन्त—महाराज ! इस रथ में बैठ जाइये ।

राम—मन्त्र जी ! बनों में रथ कहां से आयेगा ? हमें तो पैदल ही चलना है और इसी में ही आनन्द है ।

सुमन्त—परन्तु महाराज की ऐसी ही आज्ञा है ।

राम—अच्छा ! यदि ऐसा है तो चलो ।

[तीनों का रथ में बैठना, प्रजावासियों का पीछे चलना]

दृश्य नवां

(तमसा नदी का किनारा)

राम—अच्छा नगरवासियो ! तुम्हारे प्रेम के लिये हम बड़े अभारी हैं । परन्तु अब घरों को लौट जाओ और राज-प्रबन्ध में भरत का हाथ बटाओ !

एक नगरवासी—हे नाथ ! जल के बिना मीन और मणि के बिना सर्प रह सकता है परन्तु हम आपके बिना नहीं रह सकते, आपका वियोग किसी प्रकार भी नहीं सह सकते । इसलिए इतनी कृपा कीजिये कि हमें भी साथ चलने की आज्ञा दीजिये ।

राम—अच्छा तो लो ! अब रात्रि हो आई है सब लोग विश्राम करो ।

सब—जैसी आज्ञा प्रभो !

[सब का सो जाना, राम का उठना]

राम—(सुमन्त को जगाकर) हे तात सुमन्त ! उठो, रथ तैयार करो, प्रजा के लोगों को छोड़ जाना ही उचित है, नहीं तो ये फिर हट करेंगे और बनों में जाकर वृथा दुख भरेंगे।

सुमन्त—किन्तु नाथ ! प्रातःकाल उठने पर इनको बड़ा दुख होगा।

राम—नहीं, सब समझ जायेंगे और निराश होकर अपने घरों को लौट जायेंगे अन्यथा इनके परिवार की क्या दशा होगी ?

सुमन्त—ठीक है महाराज ! चलिये, रथ पर सवार हो जाइये।

राम—सुमन्त जी ! रथ धीरे-धीरे चलाइये ऐसा न हो कि उसकी झंकार सुनकर ये लोग जाग पड़ें।

[तीनों सहित सुमन्त का चले जाना]

एक प्रजावासी—(जाग कर) अरे भाई ! तुम लोग सोये पड़े हो और भगवान राम का कुछ पता नहीं।

[सब का जागना]

दूसरा—हाय ! बड़ा अन्याय हुआ, प्रभु हमें सोता छोड़कर चले गये, चलो-चलो उन्हें ढूंढें।

तीसरा—भाई रात-रात में रथ न जाने कितनी दूर चला गया होगा अब हम उन्हें कैसे पा सकते हैं ?

चौथा—हाय हाय ! हम से तो एक मछली का जीवन ही अच्छा है जो अपने प्यारे जल से बिछुड़ते ही प्राण त्याग देती है और हम राम के वियोग में जीवित हैं।

पहला—भाई ! हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा था अब पश्चाताप करना व्यर्थ है, चलो अब अयोध्या ही लौट चलें !

[सब का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(श्रंगवीरपुर)

[राम, लक्ष्मण, सीता का आना, राजा गुह का प्रणाम करके भें करना।]

राजा गुह—मेरे अहो भाग्य हैं जो रघुकुल भूषण श्रीराम ने अपने चरण कमल से इस स्थान को पवित्र बनाया है।

राम—(गुह को छाती लगाकर) प्रिय मित्र ! आज आप से मिलकर मन को बड़ा आनन्द आया है।

गुह—महाराज ! अब नगर में चलकर कुछ दर विश्राम कीजिये और और थोड़ा जलपान करके सेवक को सम्मान दीजिये।

राम—प्यारे सखा ! मुझे पिता की आज्ञा है कि चौदह वर्ष तक नगर में न जाऊं और बनों में रह कर ही तपस्वी का जीवन बिताऊं।

गुह—(आश्चर्य से) ओह ! बड़े आश्चर्य की बात है। महाराज के मन में यह क्या समाया, जो आपको बनवासी बनाया ?

लक्ष्मण—भाई ! हमारी सौतेली माता कैकयी ने महाराज से दो वरदान पाये जिन में भरत को राजा और हम बनवासी बनाए !

गुह—ओह ! इतना अन्याय। माता और पुत्रों को बनवासी बनाए !

राम—नहीं भाई ! यह सब विधाता की माया है, भाग्य के आगे सभी ने सिर झुकाया है।

गुह—तो महाराज ! कुछ चिन्ता न कीजिये, मुझे आज्ञा दीजिये। आप की सब प्रकार से सेवा बजाऊंगा और जिस वस्तु की आवश्यकता होगी वह यहीं लाऊंगा।

राम—नहीं ! आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। हमें सब प्रकार की सुविधा है। तुम नगर में जाओ और अपना काम सम्भालो।

गुह—जी तो नहीं चाहता परन्तु आपकी आज्ञा है, इसलिये जाता हूं।

[जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! अब जाकर बड़ का दूध लाओ और जटा बढ़ाओ।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाना]

सुमन्त—(रोकर) दूध ! बड़ का दूध ! क्या जटा बढ़ाई जायेंगी ? क्या ताज पहनने वाले शीश पर मुनियों वाली लटा चढ़ाई जायेंगी ? क्या देख रहा हूं प्रभो :—

कहां पृथ्वी पै यह सोना कहां वह उच्च सिंहासन ।
कहां मखमल के वे गद्दे कहां यह धूल में आसन ।।
कभी जिस शीश पर मैंने मुकुट की इक छटा देखी ।
उसी सिर पर विराजी आज मुनियों की जटा देखी ।।

[लक्ष्मण का बड़ का दूध लाना और जटा बढ़ाना]

सुमन्त—बस हो चुकी महाराज ! अब कैकायी की आज्ञा पूरी हो चुकी, यह बन का शृंगार अब नहीं देखा जाता; चलिये रथ तैयार है अयोध्या को वापस चलिये ।

राम—यह क्या कहते हो मन्त्री !

सुमन्त—सुनिये प्रभो !

गाना (लावनी)

दोहा—बार-बार विनती करूं दया-सिन्धु जगदीश ।
जो आज्ञा महाराज की कहूं नवा कर शीश।।
जब गमन किया तुमने बनको महाराज के आंसू बहने लगे ।
व्याकुल होकर सिर पीट लिया और रो-रो ऐसे कहने लगे ।।
तुम जाकर इनके साथ सुमन्त इनको बन खूब दिखा लाना ।
गंगा-स्नान करा देना फिर उल्टा यहीं फिरा लाना ।।
अब हाथ जोड़ कर विनती है इतनी करुणा हे नाथ करो ।
बस साथ चलो वापस मेरे मत नगरी तात अनाथ करो ।।
रघुकुल दीपक बुझ जायेगा जीना दुश्वार पिता को हो ।
माता अन्धी हों रो-रो कर जनता बरबाद सदा को हो ।।

राम—

गाना (लावनी)

दोहा—ज्ञानवान हो मन्त्री, सर्व गुणों की खान।
सत्य बराबर तप नहीं, कहते वेद पुराण॥

जिस सत्य पै अपना जीवन भी शिबि, हरिश्चन्द्र ने वारा है।
और रन्तिदेव, राजा बलि ने सकट में जिसको धारा है॥
यह अहो भाग्य है मेरा जो वह सत्य मिला आसानी से।
क्या मूरख बन कर छोड़ चलू मैं उसको ही नादानी से॥
अब लौट जाओ मानों कहना, कहना कर जोड़ पिता जी से।
यह कष्ट है चौदह वर्षों का काटो बस इस को राजी से॥
मैं छोड़ बनों को नगरी में विश्राम नहीं कर सकता हूं।
जिससे अपयश हो दुनियां में वह काम नहीं कर सकता हूं॥

दोहा—हितकारी हो मन्त्री हो तुम पिता समान।
लौट जाओ वापस अभी, वचन हमारा मान॥

सुमन्त—लौट जाऊं ? परन्तु राम ! जब महाराज पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? जब वे दुखी होंगे तो उन्हें किस प्रकार शान्त करूंगा ?:—

फिर रहा है उनको आंखों में नजारा मौत का।
लुट गये सारे सहारे है सहारा मौत का॥

राम—सुमन्त जी ! आप जानते है कि शूरवीर संकट से नहीं घबराते हैं, आपत्ति आने पर भी पग पीछे नहीं हटाते हैं।

चौपाई

सिंह, सती अरु शूर सिपाही।
मार्ग तजें नहि संकट मांही॥
जो बन बीच सकल दुख पाऊं।
वचन हार पीछे नहिं जाऊं॥
तात ! सहेहु यह संकट भारी।
अवध जाहु एहि सत्य विचारी॥

सुमन्त—अच्छा न सही ! यदि आप अपनी प्रतिज्ञा से विवश हैं तो न सही; परन्तु लक्ष्मण और जानकी को तो बनवास नहीं मिला है, उनको तो बनों में रहने के लिये किसी ने नहीं कहा है। उन को ही वापस भेज दीजिये, महाराज की शान्ति का कुछ तो उपाय कीजिये।

लक्ष्मण—सुनिये ! मन्त्री जी ? पहिले मेरी एक बात ध्यान से सुनिये।

गाना (लावनी)

दोहा—तुम्हीं कही हे मन्त्री ! है वह कैसा राज ?
प्रजाजनों पर जिस जगह निठुर हुए महाराज ॥
उस नगरी का उस राजा का फिर कौन भला सम्मान करे।
जो आप रहे निज महलों में वन गमन प्रिय संतान करे ॥
उस जगह हमारे जीवन का कैसे फिर कहो गुजारा हो।
जिस जगह भेद हो आपस में इक शत्रु हो इक प्यारा हो ॥
जिस राज के राजा भरत लाल कैकयी शीलवन्ती माता।
उस राज का नाम तो लेते ही आंखों में खून उतर आता ॥
तुम जाकर यों ही कह देना जो हमने वचन सुनाये हैं।
अब वापस लौट नहीं सकते उस राज से हम भर पाये हैं ॥

राम—प्यारे मन्त्री ! लक्ष्मण की बातों पर ध्यान न देना और मेरी ओर से पिता जी को कहना कि वे हमारे वियोग में आहें न भरें, इस दुःख को शान्ति से सहन करें। चौदह वर्ष जल्दी ही बीत जायेंगे और अयोध्या लौट कर हम उनके दर्शन पाएंगे !

सुमन्त—(सिर पीट कर) धिक्कार है !, धिक्कार है ! अभागे सुमन्त तुझे लाख बार धिक्कार है। कान सुन रहे हैं, हृदय मनन कर रहा है, बुद्धि सोच रही है; परन्तु उपाय ! उपाय कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं ? हे विधाता ! ऐसे विकट समय पर क्या करूं ?

दिल तड़फ उठा है और जलने लगी छाती मेरी।
हाय! इस घटना से पहले मौत आ जाती मेरी।।

[मूर्छित हो जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! सुमन्त जी मूर्छित हो गए हैं, अब हमें आगे चल देना चाहिये ! नहीं तो इनका दुःख हम से न देखा जायगा और हमारे साहस में विघ्न आयेगा ?

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा प्रभु !

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

(गंगा का किनारा)

राम—अरे भाई केवट ! शीघ्र अपनी नाव लाओ और हमें गंगा पार लगाओ।

[केवट चुप रहता है]

राम—भाई हमें देर हो रही है, अब अधिक विलम्ब न करो और नाव लाकर हमें पार करो !

[केवट फिर चुप रहता है]

राम—अरे भाई ! क्या बात है ? तुम शीघ्र नाव क्यों नहीं लाते हो ?

केवट—महाराज ! मैं आपका सारा भेद जानता हूं। आपके चरणों की रज में जीव डालने की कला है। आपको नाव पर चढ़ाकर क्या मुझे अपना व्यवसाय खोना है, दाने-दाने को मोहताज होना है।

राम—अरे भाई ! हम तुम्हारी रहस्य भरी, बातों को कुछ भी नहीं समझे। अपना तात्पर्य खोल कर बताओ।

केवट—सुनिये प्रभो !

गाना

टेक—मेरी इक विनय सुनो भगवान, प्रभो तुम अनुपम दया निधान !

अन्तरा (१) पार लगाऊं कैसे स्वामी ! मन में इक संकोच ।
क्षमा कीजिये नाथ ढिटाई हूं अज्ञानी पोच ।।
नहीं कुछ ज्ञान वान विद्वान-मेरी इक·····
(२) चरण कमल की रज छूते ही उड़ी अहिल्या नार ।
वह पाषाण कठोर प्रभो जी ! बना रूप सुकुमार ।।
गगन को उड़े नाव श्रीमान-मेरी इक·····
(३) जो उड़ गई नाव तो भूखा मरे मेरा परिवार ।
पहले चरण पखारन दो प्रभो पीछे करदूं पार ।
दीजिये कुशल यही वरदान-मेरी इक·····

हे प्रभो ! यदि आपको पार होना है तो इतनी कृपा कीजिये कि मुझे अपने चरण धोकर रज को छुड़ा देने की आज्ञा दीजिए ।

राम—ओहो ! यह बात है ! अच्छा भाई तुम अपनी यह भी शंका मिटाओ । :—

गाना

तर्ज—सुनो जी रघुराई, कहूं कर जोड़

टेक—चरण धो भाई ! करो भ्रम दूर ।

अन्तरा (१) जल लाकर पग धोले मेरे, नहीं कोई कठिनाई ।
फिर जल्दी से पार उतारो, कितनी देर लगाई ।।
करो भ्रम दूर·····
(२) जान गये हम जो सोचा है, तुम ने मन में भाई ।
इस निर्मल बुद्धि की जग में, नित नित होत बड़ाई ।।
करो भ्रम दूर·····
(३) गंगा जी के पार उतारो, लो अपनी उतराई ।
सब संकोच छोड़ भय्या दो, नय्या उधर लगाई ।।
करो भ्रम दूर·····

[केवट का कटोती में जल लाकर चरण धोना और सबका आचमन करना ।]

केवट—बोलो अधम उबारन की जय ! (राम से) आइये नाथ ! अब नाव में आइये !

[तीनों का नाव में बैठकर जाना और सीता जी का गंगा-स्तुति गाना]

सीता जी— गाना

तर्ज—तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी

टेक—शरण हूं तेरी गंगा मैया-नय्या पार लगादे, नय्या पार लगादे।

अन्तरा—तरण-तारिणी,पाप नाशिनी, जग में सदा कहाती हो।
भवसागर से दुष्ट जनों का बेड़ा पार लगाती हो॥
हमको भी अब कलिमल-हरणी, निर्मल सबल बना दे,
नय्या पार……

अन्तरा—प्राणनाथ और लक्ष्मण जी संग लौट 'कुशल' से आऊं।
चरण कमल में पुष्प, सुगन्धी, अक्षत धूप चढ़ाऊं॥
बन-जीवन में नित सुख पावें, ऐसा वर माता दे,
नय्या पार……

[पार उतरना]

सीता—लो भाई ! अब तुम अपनी उतराई लो ! (अंगूठी देना)

केवट—(पैरों में गिरकर) माता जी ! मुझे क्यों लज्जित करती हो ! आज मैंने क्या नहीं पाया, मेरे जन्म-जन्मान्तरों के पापों का नाश हो गया,सारी दरिद्रता जल कर भस्म हो गई। हे प्रभो! मैं आपकी करुणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता।

राम—प्यारे भाई ! तुम कोई संकोच न करो ! जो कुछ हम दे रहे हैं, उसे ही सब कुछ जान कर ग्रहण कर लो।

केवट—महाराज ! आप क्या कहते हैं ? आज विधाता ने मेरे परिश्रम का सारा फल दे दिया मुझे क्या चाहिये ?

राम—नहीं भाई ! ऐसा न करो, कुछ तो ले ही लो ?

केवट—अच्छा प्रभो ! यदि आपकी यही इच्छा है तो :—

चौपाई

नाथ विमल भगती वर देहू।
भव-सागर-चिन्ता हर लेहू॥
स्वामी जनम जनम फल पाऊं।
जो चरणन-अनुराग बढ़ाऊं॥

राम—एवमस्तु !

[तीनों का चल देना, परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

[सुमन्त जी मूर्छित पड़े हैं, गुह और उसके सेवक आते हैं]

गुह—अहा ! मन्त्री जी को अभी तक होश नहीं आया है; राम के वियोग ने इनको कितना व्याकुल बनाया है ? (पुकार कर) सुमन्त्र जी ! सावधान हूजिये ! बुद्धि से काम लीजिये ! यदि आप ही इस प्रकार दुखी होंगे तो महाराज को कैसे संतोष आयेगा। माताओं को धीरज कौन बंधाएगा ?

सुमन्त—(करवट लेकर) भाई ! अब धैर्य का सहारा भी रहा हो ? अच्छा अब तुम ही इतनी कृपा करो कि राम को समझा कर वापस भेज दो।

गुह—महाराज प्रभु रामचन्द्र जी तो आप को मूर्छित छोड़ कर चले भी गये हैं ! यह आप कैसी बात करते हैं !

सुमन्त—चले गये हैं ! तो मैं अयोध्या को लौट कर कैसे जाऊंगा ? यहीं किसी वृक्ष से सिर फोड़ कर मर जाऊंगा।

गुह—महाराज ! अयोध्या में आपकी प्रतीक्षा हो रही होगी, सारी नगरी विरह में जान खो रही होगी। इस लिये अब अधिक देर न लगाइये और घर वापिस लौट कर सब को समझाइये! (सेवकों से) देखो ! तुम सुमन्त जी के साथ चले जाओ और इन्हें सकुशल अयोध्या पहुंचाओ।

सेवक—जैसी आज्ञा महाराज !

[चारों सेवकों का सुमन्त जी को सहारा देकर ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(तमसा नदी का किनारा)

सुमन्त—अन्धेर ! अन्धेर ! महा अन्धेर ! भाग्य का बड़ा भयानक फेर ! आशा टूट गई ! तकदीर फूट गई ! सारा प्रयत्न असफल रहा, सारी चेष्टा बेकार गई ! सुमन्त ! अभागे सुमन्त ! राम बन को जा रहे है और तेरे पग अयोध्या की ओर दौड़ लगा रहे हैं। क्या कहेगा ? जब महाराज पूछेंगे तो त् क्या कहेगा ?

हाय पापी किस तरह महाराज को समझाएगा।
उस दुःखी मन को भला सन्तोष कैसे आएगा ॥

दशरथ ! बूढ़े और निराश दशरथ ! आज तुम्हारे हृदय में अग्नि सुलग रही होगी ! आह ! मैं क्या करूंगा ! उस अग्नि को और भी भड़काऊंगा, उस मन को और भी दुखाऊंगा।

सूखकर मुरझा गई है जिसकी आशा की कली।
हाय उस दिल में मचेगी और गम की खलबली ॥
आह ! वह निर्दोष जिसका घर अंधेरा हो गया।
रात गुजरी रोते-रोते और सवेरा हो गया ॥

[दुखी होकर बैठ जाना]

सेवक—महाराज ! मन को शान्ति दीजिये और आगे की ओर पग बढ़ाइये !

सुमन्त—बस भाई ! अब तमसा नदी का किनारा आ गया है इस लिये तुम लौट जाओ और राजा गुह को सदेश पहुंचाओ कि सुमन्त ठीक पहुंच गया !

सेवक—महाराज ! हम आपको अयोध्या तक पहुंचाकर ही चले जायेंगे ।

सुमन्त—नहीं ! अब अयोध्या दूर ही कितनी है ! तुम अभी लौट जाओ।

सेवक—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाना]

दृश्य चौदहवां

(कोप भवन)

[दशरथ पड़े रो रहे हैं,तीनों रानियां वशिष्ठ और दासी उपस्थित हैं]

दशरथ—(कौशल्या से) प्रिय ! अब मेरा अन्तिम समय निकट आ रहा है प्यारे राम का वियोग मुझ शोक के आंसू रुला रहा है। अब मुझे केवल यही कहना है कि मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है तुम उसे क्षमा कर देना, मेरे अपराध को भुला कर मेरी आत्मा को शान्ति देना।

तुम्हारे दिल में मैंने ही कपट का तीर भोंका है।
तुम्हारे लाल को मैंने ही प्यारी,बन को भेजा है॥

कौशल्या—क्या कहने लगे प्राणनाथ ! ऐसी बातें कह कर मुझे पाप की भागी न बनाओ, निराशा में डूबे हुए प्राणों को अधिक कष्ट न पहुंचाओ।

है मुझे आसान सह लेनी जुदाई राम की।
पर तुम्हारे बिन कोई सूरत नहीं आराम की॥

दासी—(आकर) महाराज ! मन्त्री जी वापस आ गये हैं।

दशरथ—उन्हें शीघ्र अन्दर ले आओ।

सुमन्त—(एक ओर) घुस आया ! चोर की तरह नगर में घुस आया। आह ! आह ! हे अनाथ अयोध्या ? आज तेरी यह दुर्दशा।

गली, बाजार और घर बार सब सूने ही सूने हैं।
अटारी, महल और दरबार सब सूने ही सूने है॥
इधर कां कां है कौओं की उधर कुत्ते बिलकते हैं।
जहां जमघट था लोगों का वहां उल्लू चहकते हैं॥

दशरथ—(रोकर) सुमन्त जी ! आप तो अकेले ही आ गये, क्या मेरी

फुलबारी को बन में ही छोड़ आए ? क्या मेरी हंसों की जोड़ी को साथ नहीं लाये ?

सुमन्त—महाराज ! आप तो विद्वान और ऊंच नीच को जानने वाले हैं। क्या राम आपके वचनों को झूठा करके वापस लौट आने वाले हैं ?

दशरथ—(तड़प कर) हाय ! हाय ! अन्तिम आशा भी टूट गई ! अब मैं कदापि न जीऊंगा !

सुमन्त—महाराज, दुख-सुख हानि-लाभ, संयोग और बियोग सब कर्मों अनुसार होता है। ज्ञानी मनुष्य सबको एक समान जानता है और अज्ञानी रोता है :—

विधाता की गति टाले नहीं टलती है दुनिया में।
वही ज्ञानी हैं जो सन्तुष्ट हैं ईश्वर की इच्छा में ॥

दशरथ—अच्छा, यह तो बताओ कि मेरे राज दुलारों ने किस प्रकार बन-गमन किया ?

सुमन्त—महाराज ! पहला पड़ाव तमसा नदी के किनारे हुआ ! वहाँ से अयोध्या वासियों को लौटाया गया। इसके बाद श्रृंग-वीर पुर में राजा गुह से भेंट हुई और राम ने बड़ का दूध मंगा कर जटा बढ़ाई। फिर गंगा जी के तट पर पहुंच कर कुछ देर विश्राम किया और जानकी सहित दोनों भाई मुझे मूर्छित छोड़कर गंगा पार हुए तथा बन को सिधार गये।

दशरथ—क्या उन्होंने चलती बार कुछ नहीं कहा !

सुमन्त—महाराज ! राम का स्वभाव सदैव की भांति गंभीर था; उनके मुख पर शान्ति की आभा झलक रही थी। उन्होंने मुझे अनेक प्रकार से समझा कर कहा कि—

तात चरणों में पिता जी के नमस्कार मेरा।
अरु नगर वासियों को आखरी है प्यार मेरा॥
कहना उनसे न करें याद न जल नैन भरें।
होके सँतुष्ट रहें बस यही उपकार करें॥

दशरथ—यदि कुछ और भी कहा हो, तो वह भी बताओ।

सुमन्त—हां ! उन्होंने यह भी कहा था कि माताओं से मेरा प्रणाम कहना और उन्हें हर घड़ी यह कह कर समझाते रहना कि:—

बन में आराम से हैं लाल तुम्हारे माता।
चरण छूवेंगे वे तत्काल तुम्हारे माता॥

दशरथ—प्यारे सुमन्त ! उन्होंने भरत को तो याद नहीं किया ?

सुमन्त—किया था और उनके नाम यह सन्देश दिया था कि वे आनन्द से राज करें और हमारी ओर की कोई चिन्ता न करें दीन और अनाथ को सहायता अपना कर्त्तव्य मानें और प्रजा के कल्याण में अपना कल्याण जानें।

कौशल्या—और मेरे लक्ष्मण का क्या हाल था ?

सुमन्त—लक्ष्मण जी को कुछ क्रोध था। वे कहते थे कि जिस राज्य में न्याय नहीं, हम वहा लौटकर कदापि न जाएंगे ! केवल राम के अनुराग में ही जीवन बिताएंगे :—

हमें है प्रम रघुवर से यह सब संसार मिथ्या है।
न हमको राज इच्छा है न कुछ सुख की ही इच्छा है॥

दशरथ—हां ! लक्ष्मण ने ठीक कहा है। निस्सन्देह मैं अन्यायी हूं, मैं पापी हूं, मैंने न्याय का गला घाटकर अन्याय का साथ दिया है। परन्तु बेटा लक्ष्मण ! इस समय मैं मरने जा रहा हूं। तुम मेरे दोषों को भूल जाना, मेरे पापों को मन में न लाना।

सुनो यह आखरी अरदास मरते की लखन बेटा।
करो अपराध को मेरे बस अब मन में दमन बेटा॥

सुमित्रा—सुमन्त जी ! कुछ जानकी का भी तो वृत्तान्त सुनाओ !

सुमन्त—वे राम के चरणों में बहुत सुखी थीं। उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि मेरा पतिव्रत-धर्म जान के साथ है, इसलिये अयोध्या लौट जाना असम्भव सा बात है। अन्त में प्यारे राम ने गुरुजी के नाम यह सन्देश दिया कि अब नगरी की रक्षा और माता-पिता की शान्ति का भार उन्हीं पर है, इसलिये

जब तक भरत जी आयें गुरुदेव सब कार्य शान्ति पूर्वक चलायें और पिता-माताओं का समझायें।

दशरथ—बस! वर्षों की लीला अब समाप्त हो रही है! अभागे दशरथ की आत्मा परलोक यात्रा के लिये सावधान हो रही है।

कौशल्या—महाराज! धैर्य धरो! होनी बलवान है, विधाता की गति महान है।

दशरथ—हां प्रिय! आप सत्य कहती हैं। निस्सन्देह! होनी बड़ी बलवान है। ओह अपने जीवन मे मैंने क्या नहीं देखा? मेरी युवावस्था थी; उमंगे जोश मार रही थीं; एक दिन आखेट खेलने जंगल में गया, नदी की ओर से आती हुई आवाज पर हिरण जान कर शब्द बेधी बाण चला दिया। आह! वह हिरण एक तपस्वी का दिल था; दो अंधों के कलेजे का टुकड़ा था; शान्तु का पुत्र श्रवण कुमार नदी पर जल लेने आया था; मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि मैंने किस पर तीर चलाया था। आह! उस निर्दोष ने कई घण्टे तड़प-तड़प कर दम छोड़ दिया। और मेरी आत्मा पर पश्चाताप का वज्र तोड़ दिया। अन्त में उसके अन्धे माता पिता ने यह शाप दिया कि दशरथ! हमारी तरह सन्तान के विरह में तेरी भी जान जायेगी और याद रखना कि अन्तिम बार तुझे भी शान्ति न आयेगी। आह! प्यारो! मैं चला! मेरा दम निकला! अच्छा मुझे विदा करो! बेटा राम क्षमा करना! प्यारे लक्ष्मण! क्षमा करना! जनक दुलारी सीते क्षमा करना! राम! हे राम!

[प्राण त्याग देना]

कौशल्या—(सिर पीट कर) हाय! प्राणनाथ! आप तो सचमुच ही परलोक चल दिये। हाय विधाता! हमारे सिर पर आपत्ति का कैसा पहाड़ गिर पड़ा।

गाना— हाय स्वामी चल दिये मुझ को अकेली छोड़कर।
तुम बिन मर जाऊंगी दीवार से सिर फोड़ कर॥

उस तरफ वे प्राण से प्यारे मेरे बन को गये।
इस तरफ तुम भी हो जाते मुझ से नाता तोड़कर॥
कौन मुझ कर्मों की मारी को दिलासा दे यहां।
किस तरह जोऊंगो मैं सारे सहारे छोड़ कर॥
हो गई मेरे लिये सारी अयोध्या शोक घर।
चल दिये अपने-पराये अब कुशल मुंह मोड़ कर॥

सुमित्रा—हाय ! प्राणनाथ ! मैं लुट गई।

गाना चले हो छोड़ किस पर नाथ ! अब आंसू बहाने को।
अभागी रह गये हैं हम यहाँ संकट उठाने को॥
उमड़ कर हाय ! चारों ओर से दुख की घटा आई।
नगर पर संकटों की दम-बदम झड़ियां लगाने को॥
जिधर देखें उधर ही बस निराशा ही निराशा है।
रहा है कौन अब दुखियाओं के धीरज बन्धाने को॥
'कुशल' यह भाग्य भी कैसा निठुर अब बन गया देखो।
बहाने ढूंढता है नित नये हमको सताने को॥

वशिष्ठ—देवियो ! धैर्य धरो, अधिक रुदन न करो। रोने से क्या फल मिलता है ? ऐसे समय तो शान्ति से ही काम चलता है। अब जितने शीघ्र हो सके भरत जी को बुलाने का उपाय करना चाहिये और उनके आने तक महाराज की मृतक देह को सुरक्षित रखना चाहिये !

कौशल्या—महाराज ! ये उपाय आप ही कर सकते हैं।

वशिष्ठ—अच्छा, मैं अभी दूत को भेजकर भरत को बुलाता हूं और एक बड़े पात्र में तेल भरवाकर महाराज का मृतक शरीर रखवाता हूं। (द्वारपाल से) द्वारपाल ! तुम अभी जाकर राज-दूत को हमारी आज्ञा सुनाओ कि तुरन्त कैकेयपुर जाकर भरत को बुला लाए।

द्वारपाल—जसी आज्ञा ऋषिराज !

[जाना, परदा गिरना] आरती

सातवां अंक

दृश्य पहला

(कैकेयपुर में भरत का शयन गृह)

[भरत जी को स्वप्न में राम बन-गमन का दृश्य दिखाई दे रहा है]

भरत—(नींद से चौंककर) हैं ! यह क्या ? अवध के महलों में शोक का समागम ! राज दरबार में अशान्ति का पहरा (सोचकर) नहीं, कुछ नहीं, स्वप्न की बात है, इसका क्या विश्वास है (फिर सो जाना किन्तु कुछ देर बाद फिर चौंकना) हैं, फिर वही दृश्य ! फिर वही मन को अधीर कर देने वाली लीला ! राम की बन की तैयारी ! सीता का राज महल का त्याग ! यह क्या हो रहा है प्रभो ! (फिर सो जाना और फिर उठना) न सोने दिया ! इस भयानक स्वप्न ने फिर भी न सोने दिया। आह ! फिर वही भयंकर दृश्य, फिर वही डरावना स्वप्न ! ओह ! दिल धड़क रहा है, कलेजा फड़क रहा है, हे जगदीश! आज यह कैसा परिवर्तन होने वाला है ?—

गाना

क्या जानूं क्या हुआ है ? दिल बैठा जा रहा है।
तारे से टूटते हैं अन्धेर छा रहा है॥
देखा वह स्वप्न मैंने जो आज तक न देखा।
मानो कोई अवध पर बिजली गिरा रहा है॥
घर बार सब उजड़ कर खण्डर बने हैं मानो।
सारा नगर खड़ा है आंसू बहा रहा है॥

तेरी गति विधाता ! यह क्या हमें दिखाया ?
जिसके विचार से ही मन तलमला रहा है !!

[शत्रुघ्न का प्रदेश]

शत्रुघ्न—भ्राता जी ! आज आप कुछ घबराये हुए से जान पड़ते हैं। क्या कोई नई घटना घट गई है।

भरत—क्या बताऊं भाई ! तुम देख ही रहे हो कि कुछ दिनों से मन अधीर सा रहता है, चित्त चंचल सा हो रहा है, और आज के स्वप्न ने तो सारा ही सन्तोष धूल में मिला दिया; हृदय को बिल्कुल ही पागल बना दिया। न जाने यह अधीरता क्या करके रहेगी ?

शत्रुघ्न—भ्राता जी ! स्वप्न की बात तो बिल्कुल निर्मूल होती है उस पर विश्वास करना एक प्रकार की भारी भूल होती है।

भरत—नहीं ! यह स्वप्न, स्वप्न नहीं कहा जा सकता, मेरा यह असन्तोष खाली नहीं जा सकता !

[योद्धाजीत का प्रवेश]

योद्धाजीत—बेटा भरत ! अयोध्या से एक दूत आया है जो गुरु वशिष्ठ जी का कोई सन्देह लाया है।

भरत—हां ! मैं तो पहले ही कह रहा था कि कोई नया समाचार आने वाला है। अच्छा मामा जी ! वह दूत कहां है ? मैं उससे मिलना चाहता हूं।

योद्धाजीत—द्वार पर खड़ा है, मैं अभी बुलाता हूं।

[दूत का आना]

भरत—क्यों भाई ! क्या संदेश लाया है ?

दूत—महाराज ! आपको गुरुदेव ने बुलाया है।

भरत—अच्छी बात है। मैं अभी चलता हूं। अयोध्या में सब प्रकार से कुशल तो है ना ?

दूत—महाराज ! गुरु जी का आदेश है कि आप को तुरन्त बुला कर ले जाऊं; इसके अतिरिक्त और कुछ न बताऊ ।

भरत—अच्छा मामा जी ! जल्दी रथ तैयार करा दीजिये और हमें जाने की आज्ञा दीजिये !

योद्धाजीत—हां बेटा ! अवश्य जाना चाहिये। मैं अभी रथ तैयार कराता हूं, तुम वस्त्र पहन कर आ जाओ !

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(अयोध्यापुरी)

भरत—आह विधाता ! नगरी की यह दुर्दशा ! मुंडेरों पर कौवे बोल रहे हैं, बाजारों में सियार डोल रहे हैं। बाग बगीचे और ताल शोभाहीन प्रतीत होते हैं, पशु चरना छोड़ कर आलस्य में पड़े सोते हैं। जो कोई आता है चुपचाप प्रणाम करके चला जाता है, मानों किसी के मुंह में जबान नहीं या किसी से हमारी जान-पहचान नहीं।

गाना

दिशाएं रो रही हैं कुल नगर में शोक छाया है।
विधाता! आज क्या अशगुन इन आंखों को दिखाया है॥
भवन सूने से लगते हैं गली बाजार निर्जन हैं।
रची है आज क्या रचना प्रभो यह कैसी माया है ?
निराशा गूंजती सुन पड़ रही है वायु-मंडल में।
हर इक वस्तु के अन्तर में विरह का रंग पाया है॥
जहां आनन्द का घर था कुशल है शोक का वासा।
न जाने आज क्या संसार ने पलटा सा खाया है॥

शत्रुघ्न—निस्सन्देह भ्राता जी ! चारों ओर अशगुन ही होते जा रहे हैं, जो किसी भारी दुर्घटना का पता बता रहे हैं।

भरत—आह भाई ! नगर के समस्त व्यवहार उलटे दिखाई पड़ रहे हैं। मानों चारों ओर से अंगार झड़ रहे हैं। :—

किसी के शोक में देखो सकल घर-बार रोते हैं।
कहीं बच्चे बिलखते हैं कहीं परिवार रोते हैं॥
हुआ है शोक का संचार नगरी की हवाओं में।
निराशा छा रही है कुल अयोध्या की दिशाओं में॥

शत्रघ्न—चलो भ्राता जी ! महल में चल कर ही इसका कारण पूछें! यहां कोई न बतायेगा।

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(कैकेयी का महल)

[भरत और शत्रुघ्न को देखकर आरती का थाल सजाती है]

कैकेयी—आओ बेटा ! तुमने तो आने में बड़ी देर लगाई। कहो कैकेयपुर में तो सब कुशल हैं ?

भरत—हां माता जी ! सब प्रकार से कुशल हैं। परन्तु आज पिता जी और भाई राम-लक्ष्मण कहां हैं ?

कैकेयी—बेटा ! पहले कुछ विश्राम करलो, थोड़ा जल-पान करलो फिर सब कुछ ज्ञात हो जायगा।

भरत—नहीं ! जब तक मैं उनके दर्शन न कर लूंगा, मुझे चैन न आयेगा।

कैकेयी—बेटा, इतनी जल्दी क्या है, मैंने सब कुछ ठीक कर रखा है।

भरत—क्या ठीक कर रखा है ? बताओ, जल्दी बताओ ! पिता जी और भाई राम-लक्ष्मण जी कहां हैं ?

कैकेयी—बेटा ! मथरा दासी ने मुझे बड़े अच्छे अवसर पर सावधान किया, नहीं तो सारा ही कार्य बिगड़ जाता और फिर हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ हाथ नही आता।

भरत—आज तुम कैसी रहस्य भरी बातें कर रही हो माता जी ? पहले जो कुछ मैं पूछ रहा हूं, उसका उत्तर दो।

कैकेयी—हां, कह तो रही हूं कि मैंने सारा काम बना छोड़ा परन्तु खेद है कि महाराज ने मगल के समय ही दम तोड़ा।

भरत – हैं ! क्या पिता जी स्वर्ग सिधार गये ?

कैकेयी—हां बेटा !

भरत—ओह ! विधाता ! यह कैसा दुर्दिन दिखाया, मैं तो अन्तिम बार दर्शन भी न करने पाया ! हाय-हाय !

करेगा कौन अब संसार में यों मामता मेरी।
खबर अब कौन लेगा आपके पीछे पिता मेरी।।

[मूर्छित होकर गिरना]

कैकेयी—उठो बेटा, मरना जीना तो विधाता के अधिकार में है।

शत्रुघ्न—परन्तु माता जी ! पिता जी ने कैसे प्राण त्यागे ? क्या कुछ रोग हो गया था ?

कैकेयी—कुछ भी नहीं ! राम के वियोग के कारण कुछ पागल से हो गये थे; बस उन्हीं का नाम लेते-लेते परलोक सिधार गये !

भरत—(उठकर) हैं ! राम का वियोग ! यह क्या ? राम कहां चले गये थे ?

कैकेयी—राम का बन जाना ही तो उनकी मृत्यु का कारण बना बेटा!

भरत—राम का बन जाना ! यह कैसी बातें कर रही हो ?

कैकेयी—मैं ठीक कह रही हूं बेटा ! एक बार मैंने महाराज से दो वरदान पाए थे। जब राजा तुम्हारा अधिकार छीन कर कौशल का राज्य राम को देने लगे तो मैंने मंथरा के कहने से सुअवसर जानकर महाराज से अपने दोनों वरदान मांग लिये। एक में तुम्हारे लिये राज्य और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का बनवास।

भरत—हाय ! सर्वनाश ! (गिरना)

शत्रुघ्न—तो क्या ! राम के बन जाती बार किसी ने भी उन का साथ न दिया ? और वे अकेले ही चले गये !

कैकेयी—नहीं, लक्ष्मण और जानकी ने उनके साथ जाना ही स्वीकार किया और तीनों के जाते ही महाराज का स्वर्गवास हुआ।

भरत—(व्यंग से) माता जी ! यह तुमने बड़ा सुन्दर काम किया ! धन्य है आपको !

कैकेयी—यही तो मैं भी सुनना चाहती थी बेटा। अच्छा अब महाराज की मृत्यु का दुःख भूल जाओ और निश्चिन्त होकर राज का काम चलाओ !

भरत—बस-बस ! मोह में अन्धी हो जाने वाली माता ! अब तुमने मुझे कहीं का न छोड़ा; आज अच्छी तरह मेरा भाग्य फोड़ा।

कैकेयी—क्या राज्य का इस प्रकार आदर करते हो भरत ?

भरत—राज्य ! जिस राज्य ने तुझे अन्धा बना दिया, जिस माया ने तेरी आंखों पर पट्टी बांद दी, जिस मोह ने तुझे पागल कर डाला, क्या मैं भी उसी के चक्कर में पड़कर तेरी तरह अपने कर्त्तव्य को भूल जाऊं :—

मुझे तो राज्य तेरा पापिनी ! विष के बराबर है।
जिसे तू राज्य कहती है वह ककर और पत्थर है॥

कैकेयी—क्या मेरी भलाई का यही बदला देते हो भरत ?

भरत—भलाई ! इस अन्याय को भलाई कहती हो ! इस पाप को अच्छाई जानती हो! मीन को जल से अलग करना भी भलाई है ? जड़ को काटकर पत्तों को सींचना भी भलाई है ?:—

पिलाया विष मुझे अच्छा किया है प्यार यह तूने।
उजाड़ा मुझको दुनिया से किया उपकार यह तूने॥
विरह का तोर छाती से किया है पार यह तूने।
लगाया घाव पर मेरे गरम आङ्गर यह तूने॥
मैं समझा खूब समझा आज तेरी प्रीति नागिन की।
कहां सीखी है तूने हाय पापिन रीति नागिन की॥

कैकेयी—बेटा ! तुम क्या कहने लगे। क्या यह भी नहीं समझते कि मैंने तुम्हारे लिये कितनी कठिनता से वरदान प्राप्त किये हैं।

भरत—वरदान ! ऐसे वरदान मांगते तेरी जबान न गल गई, तेरे मुख में कीड़े न पड़ गये ! :—

लगी अग्नि भी ममता की न छाती में जरा तेरी।
यों ही चलती रही पापिन कपट की वारणा तेरी।

गाना

तर्ज—तेरी करनी कुटिल माता

टेक—यह कैसा गुल खिलाया है—नगर सूना बनाया है।

अन्तरा (१) दुर्भागिन पापिन भरत, मर जाता यह काश।
यह कैसी माया रची कर डाला कुल-नाश॥
पिता जी को मिटाया है—नगर सूना·····

(२) पहले दिल में मारकर मेरे तीखे बाण।
देकर मुझको राज फिर, करती है सम्मान॥
यह क्या जी में समाया है—नगर सूना·····

(३) लूट लिया इक आन में, नगरी का आराम।
माताए व्याकुल करीं, वन को भेजे राम॥
सिया को दुख दिखाया है—नगर सूना·····

(४) बन-भरमण को चल दिये जब वे मेरे प्राण।
राज-काज पापिन तेरा, विष के मुझे समान॥
कुशल अब बन ही भाया है—नगर सूना·····

कैकेयी—तो क्या मेरी सारी चेष्टा निष्फल जायगी ?

मंथरा—और मथरा भी अपने परिश्रम का कुछ पुरस्कार न पायगी।

शत्रुघ्न—(मंथरा को चोटी से घसीट कर) ओ दुष्टा ! चांडाली ! तूने ही राम को बन भिजवाया है ! तूने ही इस वंश का नाश कराया है !

मंथरा—(रोती हुई) हाय भगवान ! मैं मर गई। मैंने ऐसा क्या खोटा किया है जो उसका ऐसा बदला मिल रहा है ?

भरत—भाई ! जाने दो ! स्त्री को मारना ठीक नहीं :—